The International Journal of Advanced Research In Multidisciplinary Sciences
(IJARMS)
Volume 3 Issue 2, Nov. 2020

आर्थिक विकास के साथ ही साथ नष्ट् होती हमारी संस्कृति एवं परंम्परा

M, egEen 'kehe
एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य
राजकीय महाविद्यालय, महाराजगंज

lUnHk

कोई भी देश अपनी प्रगति एवं उपलब्धियों पर तब तक गर्व नहीं कर सकता जब तक कि उसके यहॉ शिक्षा का स्तर उच्च न हो। सम्पूर्ण भारतवर्श के विकास के लिए समाज के प्रत्येक वर्ग को सस्ती और तकनीकी, ज्ञानवर्द्धक शिक्षा सुलभ कराई जानी चाहिये। वर्तमान में जो शिक्षा प्रदान की जा रही है वह छात्रों को भ्रमित करने का ही काम अधिक कर रही है। शिक्षा इस प्रकार से होनी चाहिए जिससे कि छात्र अपने जीवन काल में कुछ कमा खा सके। राश्ट् की बेरोजगारी कम हो सके तथा सभी को आजिविका चलाने का अधिक से अधिक अवसर मिल सके। शिक्षा उत्पादोन्मुख होनी चाहिए, क्याकि उत्पादन में वृद्धि ही आर्थिक विासि का मूल आधार है। गॉधीजी ने शिक्षा के क्षेत्र में इस कमी को पहचान लिया था। उन्होंने शिक्षा को उत्पादकत्ता से जोड़ने का प्रयास किया था। आज का समय आधुनिक है। हम आधुनिक समाज में जी रहे है, अतः शिक्षा को भी तकनीकि होना चाहिए, जिससे कि उद्योगों का विकास हो सके और भारत उद्योगों के विकास से और आगे बढ़ सके।

ifjp;

किसी देश का अर्थिक रूप से मजबूत होना, उस देश के निवासियों के लिए गर्व की बात होती है। हमारा देश भी लगातार सभी क्षेत्रों में अपनी सफलता के झण्डें गॉड़ता चला जा रहा है। यहॉ की मेघा का ढंका आज सारे विश्व में बज रहा है, इतना सब होने के बाद भी हमारे जीवन मूल्यों में कमी दृश्टिगोचर होती है। भारत की आत्मा तो उसके गॉवों में बसती है, अगर भारत को जानना एवं समझना है तो पहले हमें उसके गॉवों के बारे में जानना होगा। कांलातर में गॉव की समाजिक संरचना एवं संगठन में अमूल–चूल परिवर्तन हुआ हैं। भारत सरकार द्वारा चालू की गई कुछ योजनाओं यथा– डीजिटल इंडिया। स्टॉटअप इंडिया एवं सर्व शिक्षा अभियान. नरेगा तथा सूचना क्रान्ति ने इसमें काफी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की हैं। भारतीय ग्राम वासियों की जीवन ष्शैली में अभूतपूर्व ढ़ंग से बदलाव आया है। भारतीय गॉव आज आर्थिक रूप से सम्पन्न बन गए है। गॉव की प्रति व्यक्ति क्रय ष्शक्ति बढ़ गई है।

आज राज्य तथा केन्द्र दोनों ही सरकारे गॉव की उन्नति के लिए काफी धन खर्च कर रहीं हैं। आज के गॉव निश्चित रुप से पहले के जैसे नहीं रह गये है। आज हर एक गॉव में सड़के, नहरें, पाठशालायें, टेलीविजन, मोटरसाईकिल, ट्रैक्टर आदि सभी प्रकार की सुविधाऍं उपलब्ध हैं । गॉवों में विकास की यह प्रकिया निरन्तर चल रहीं हैं। खेत जोतने के लिए अब किसान को बैलों पर निर्भर रहने की जरुरत नहीं रह गई हैं। जोताई से लेकर बोआई, मड़ाई आदि सभी चीजो की आधुनिक मशीने बाजार में उपलब्ध हैं। आज गॉव संक्रमण के ऐसे दौर से गुजर रहा हैं, जहां प्रत्येक ग्रामवासी आडम्बर युक्त जीवन जी रहा हैं। आज वह सिर्फ अपने बारे में सोचता है। उसे अन्य किसी ओर से कोई सरोकार नहीं हैं। किसी दूसरे की तरक्की को देखकर वे अपने मन में उसके प्रति ईर्श्या करते हैं। आज ग्रामीण समाज पहले जैसा स्थिर, कट्टर, पिछड़ा, रुढ़िवादी, असभ्य एवं संतोशी नहीं रहा हैं। ग्रामीण समाज में बदलाव की यह प्रकिया उसके विभिन्न आयामों पर चल रहीं हैं।

चाहें वह सामाजिक हो, सांस्कृतिक हो, राजनीतिक या फिर आर्थिक हो। ग्रामिणों ने प्रत्येक क्षेत्र में अपनी गतिशीलता दर्ज करवायी हैं। गॉव अब सामाजिक ईकाई ही नहीं राजनीतिक ईकाई के रुप में उभर रहा हैं।

आधुनिकीकरण तथा आर्थिक सुधारों के चलते जहॉ सकारात्मक परिवर्तन आये हैं वहीं साथ ही साथ नकारात्मक परिणाम भी सामने आये हैं, यथा– जातीय संघर्श, गुटबाजी, छलकपट, नशाखोरी, आडम्बर, उपभोग की संस्कृति का विकसित होना, अश्लीलता को बढ़ावा मिलना आदि। जिसके परिणामस्वरुप गांव का सरल एवं सादा जीवन जटिल एवं आडम्बरयुक्त बन रहा हैं। वहां उपभोक्तावाद लगातार अपने पैर पसार रहा हैं। जैसे–जैसे ग्रामीण अर्थव्यवस्था, पूजीवादी अर्थव्यवस्था के साथ जुडती जा रही हैं, वैसे–वैसे उसका भूमंडलीकरण होता जा रहा है और उस ग्रामीण समाज का ष्हरीकरण होता जा रहा हैं। पुराने मानक एवं मूल्य लगातार बदलते जा रहे हैं। वहां इसके स्थान पर नये प्रकार के तनाव एवं राग–द्वेश एवं द्वन्द्व पनप रहे हैं। रिश्तेदारी एवं नातेदारी संबंधी मूल्यों और प्रेम–व्यवहार में अंतर आ रहे हैं। अब वह धनार्जन के नये–नये तौर–तरीको से परिचित हो रहे हैं। अब उनके पास पूंजी का कोई विशेश अभाव नहीं रह गया हैं, जिसका प्रभाव गांवों में होने वाली मंहगी ष्ाादीयों या विवाहों या फिर भव्य कार्यक्रमों और राजनीतिक क्रियाकलापो में प्रत्यक्ष रुप से देखा जा सकता हैं। इतना सब होने के बाद भी फिर भी ऐसा लगता है कि हमारे गॉव पिछड़ते चले जा रहें है। जिसकी वजह से किसान खेती छोड़ते चले जा रहे हैं और ग्रामीण क्षेत्रो से उनका लगातार पलायन हो रहा हैं।

आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार कृशि और इससे जुड़े हुये विभिन्न क्षेत्रों का सकल घरेलू उत्पाद जिसे हम संक्षेप में जी0 डी0 पी0 कहते है, का योगदान 2009–2010 में महज 0.2 प्रतिशत ही था, जो यह दर्शाता है कि हमारी कृशि का भविश्य अन्धकारमय है। गॉवों के नौजवान न तो कृशि में ही रूचि ले रहे है और न उन्हें गॉव में रहना ही रूचिकर लगता है। राश्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के एक अध्ययन के मुताबिक लगभग 40 प्रतिशत किसान खेती छोड़ना पंसद करेगे यदि उन्हें ऐसा करने की छूट दे दी जाय। दुर्भाग्यवश, उनके लिए ष्हरी मलिन बस्तियों में जाने के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं हैं। किसानों की सर्वाधिक बदतर स्थित आंध्र प्रदेश एवं महाराश्ट् जैसे उन अग्रणी राज्यो में है जो 1991 में प्रारम्भ नयी आर्थिक नीतियों से खासे लाभान्वित हुए है, और प्रति व्यक्ति आय की दृश्टि से काफी आगे हैं ।

इन विकट स्थितियों के चलते इन राज्यों के हजारों किसानों ने आत्महत्या तक कर लिया। जिन किसानों ने आत्महत्या नहीं की है उनकी स्थिति आत्महत्या करने वाले किसानों से बहुत अच्छी नहीं हैं। आत्महत्या से सर्वाधिक प्रभावित महाराश्ट् का विर्दभ क्षेत्र हैं। इसी प्रकार से देश के ष्ोश गांवो के किसानों की स्थिति भी विर्दभ एवं उसके जैसे प्रभावित अन्य राज्यो के किसानो से अलग नहीं हैं। आज विकास की इस दौड में गॉवों की प्राचीन विरासत एवं परम्परा कहीं विलुप्त न हो जाये इस पर ध्यान देने की जरूरत है। हमारे गॉव ही भारतीय संस्कृति एवं परम्पराओं के प्रतिबिम्ब है। इन गॉवों से ही हमारी पुरातन परम्पराएं, रीति–रिवाज, प्रथाये, रूढ़ियां एवं संस्कृति आदि आज भी जीवित है। गॉव की युवा पीढ़ी आधुनीक संचार साधनों का तो उपयोग करे मगर कहीं इसके चुंगल में न फंसकर रह जाये इस बात पर ध्यान रखने की जरूरत हैं। संचार साधनों में हुई प्रगति का लाभ आज प्रत्येक ग्रामिण उठा रहा है। पहले जहॉ लोगों के पास टेलिफोन जैसी बुनियादी चीज नहीं थी, वहीं आज प्रत्येक व्यक्ति के हाथ में आधुनिक मोबाइल सेट है। गॉवों के प्रत्येक चट्टी–चौराहों पर साइबर कैफे खुले है और जहॉ नहीं खुले है वहां पर भी तेजी के साथ खुलते ही चले जा रहे हैं।

इन साइबर ढाबों/साइबर कैफों पर गांवों के नौजवानों की भीड़ कभी भी देखी जा सकती है। गांवों में होने वाले इन परिवर्तनों के नकारात्मक प्रभाव भी अब सामने आ रहे है। इन प्रभावों ने गांवों की प्राचीन परम्परा और उसकी जड़ों को हिलाकर रख दिया है। गॉव की प्राचीन परम्परा एक मुठ्ठी में बन्द रेत की तरह से फिसल कर बाहर निकलती चली जा रही है। इस स्थिति ने उसे किंकर्तव्यविमूढ़ बना दिया है। वह समझ नहीं पा रहा कि आने वाली नई तकनीकी का अपने गॉव में स्वागत करे अथवा उसका विरोध करे। प्राचीन मान्यताओं तथा आधुनिकता के बीच में पड़ कर वह छटपटा रहा है, उसका दम फूल रहा है।

एक दिशाहीनता का वह अनुभव कर रहा है। शीघ्रता से होते जा रहे ष्हरीकरण को वह बस मूक दर्शक बन करके देख रहा है। कृशि तथा पशुपालन जैसे व्यवसाय जो कि उसकी जीविका का एक आधार बिन्दु था अब उससे दूर होता चला जा रहा है। कृशि योग्य भूमि का व्यावसायिकरण होता चला जा रहा है। देश में इस समय लगभग छह लाख गॉव है जिनमें से चार लाख गांवों में खाद्यान्न का उत्पादन होता हैं। जरुरत है उनको प्ररित करने की ताकि वे शिक्षा के साथ ही साथ आधुनिक कृशि ज्ञान को भी समझे तथा उसे सीखे। ''उत्तम खेती मध्यम बान'' यह पुरानी कहावत एकदम से सटीक है। सच तो यह है कि ग्रामीण विकास के बिना हमारे देश की उन्नति सम्भव ही नहीं है।

भारत के आर्थिक विकास में शिक्षा की भूमिका बड़ी ही महत्वपूर्ण है, लेकिन यह भी एक सत्य है कि इसके मूल्यों में कमी आयी है। फलस्वरूप शिक्षित बेरोजगारों की संख्या में प्रतिवर्श इजाफा देखने को मिल रहा है। ज्यों–ज्यों शिक्षा का व्यावसायिकरण होता गया वैसे ही इसके नैतिक मूल्यों में कमी देखने को मिल रही हैं। आज के विश्वविद्यालय केवल कागज की डिग्री बॉटने वाले केन्द्र बन कर रह गये हैं। विश्व के टाप के दो सौ कालेजों की लिस्ट में हमारे देश के एक भी कालेज का नाम न मिलना हमे अब कोई अचम्भीत नहीं करता। अपने देश से काफी छोटे–छोटे कई अन्य देशों के कालेजो के नाम इस लिस्ट में शामिल है। अभी हाल में दुनियां के जाने–माने विश्वविद्यालयों के एक संगठन के आकलन से एक रिर्पोट आई है। यूनिवर्सिटास–21 की इस रिर्पोट ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में हमारी पोल ही खोल दी है। इस रिर्पोट के अनुसार, उच्च शिक्षा में भारत का स्थान 48 वां है। इस सूची में हमारे देश का स्थान ब्रिक देशों, ब्राजील, रूस एवं चीन के बाद सबसे अंत में आता है। इस सूची में पहला स्थान अमेरिका को दिया गया है, वहीं दूसरे स्थान पर स्वीडन और तीसरे पर कनाडा का नाम है। हमारे दश के विश्वविद्यालयों की इस दयनीय दशा के लिए केन्द्र और राज्य सरकारे दोनों ही बराबर की जिम्मेदार हैं।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की रिर्पोट बतलाती है कि देश में अभी भी 13 लाख से भी ज्यादा शिक्षकों की कमी है। कोई भी देश अपनी प्रगति एवं उपलब्धियों पर तब तक गर्व नहीं कर सकता जब तक कि उसके यहॉ शिक्षा का स्तर उच्च न हो। सम्पूर्ण भारतवर्श के विकास के लिए समाज के प्रत्येक वर्ग को सस्ती और तकनीकी, ज्ञानवर्द्धक शिक्षा सुलभ कराई जानी चाहिये। वर्तमान में जो शिक्षा प्रदान की जा रही है वह छात्रों को भम्रित करने का ही काम अधिक कर रही है। शिक्षा इस प्रकार से होनी चाहिए जिससे कि छात्र अपने जीवन काल में कुछ कमा खा सके। राश्ट् की बेरोजगारी कम हो सके तथा सभी को आजिविका चलाने का अधिक से अधिक अवसर मिल सके। शिक्षा उत्पादोन्मुख होनी चाहिए, क्याकि उत्पादन में वृद्धि ही आर्थिक विासि का मूल आधार है। गॉधीजी ने शिक्षा के क्षेत्र में इस कमी को पहचान लिया था।

उन्होंने शिक्षा को उत्पादकत्ता से जोड़ने का प्रयास किया था। आज का समय आधुनिक है। हम आधुनिक समाज में जी रहे है, अतः शिक्षा को भी तकनीकि होना चाहिए, जिससे कि उद्योगों का विकास हो सके और भारत उद्योगों के विकास से और आगे बढ़ सके। आर्थिक विकास के क्षेत्र में हुए विभिन्न ेगोध इस बात की पुश्टि करते है कि शिक्षा, विज्ञान एवं तकनीकी आर्थिक विकास में अपना लगभग 50 फीसदी से ज्यादा ही योगदान देते है। अतः हमें शिक्षा के साथ ही साथ विज्ञान के भी महत्व को समझना होगा। हमारे देश के वैज्ञानिकों का डंका आज पूरे विश्वभर में बज रहा है, लेकिन इसका दूसरा पहलू यह भी है कि हमारे ही युवा वैज्ञानिक आज अच्छे वेतन के लालच में अन्य विकसीत देशों की तरफ आर्कशित हो रहे है।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद मानवीय परिदृश्य में अनेक नाटकीय मोड़ आयो बीते हुए कल का साम्राज्यवादी डाँचा चरमराफर विखारने लगा और एक के बाद एक पुराने उपनिवेशों के स्थान पर नये स्वाधीन राज्यों का उदय हुआ। इन नव–स्वाधीन राज्यों में नयी सांस्कृतिक चेतना जागीय वे अपनी राष्ट्रीय अस्मिता के प्रति सजग और सचेत हुए। उन्होंने सांस्कृतिक पहचान के कुछ प्रतिष्ठा–चिन अपनाये–राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय भाषा और राष्ट्रीय देश–भूषा राष्ट्रीय एकीकरण के लिए ये जसरी थे। पर काफी नहीं। अभाव की संस्कृति दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य में विघटनकारी सिद्ध हो सकती हैरू दमित और अवरुद्ध सांस्कृतिक आकांक्षाएँ क्षेत्रीय लघु और सूक्ष्म सांस्कृतिक आन्दोलनों का रूप ले सकती हैं जिनका सम्मिलित प्रभाव देश के समूचे डोंचे को डगमगा सकता है। वैसे भी स्वाधीनता को अर्थ देने के लिए यह आवश्यक भी था कि भूखों को भोजन मिले, जनता निरक्षरता के अन्धकार से बाहर निकले, बेपरों के लिए आवास की व्यवस्था हो, रोगियों की चिकित्सा का प्रवन्ध हो। यह किसी भी स्वाधीन देश के लिए न्यूनतम कार्यसूची थी, पर इसके लिए भी संसाधनों का सुनियोजन और निवेश आवश्यक था। नवस्वाधीन देशों ने नियोजित आर्थिक विकास का रास्ता अपनाया। सम्पन्न देशों ने उनका उत्साह बढ़ाया और उन्हें आर्थिक और तकनीकी सहायता देने का आश्वासन भी दिया। बाद में यह सहायता आयी भी, पर वह न पर्याप्त थी और न समय पर ही आयी। उसके साथ कुछ शर्ते भी थींय जिनके परिणाम बाद में स्पष्ट हुए।

आर्थिक विकास के कार्यक्रम के प्रारम्भिक काल में उसकी परम्पराओं और संस्कृति से सीधी टकराहट नहीं हुई। इस बीच विकास विशेषज्ञों की अच्छी–खासी फौज मैदान में उतर आयी और मोंगे–बिन मांगे अपनी सलाह विकासशील देशों को देने लगी। विदेशी ऋण और सहायता पाने के लिए उनकी सलाह मांगना और उस पर चलना जरूरी था। इन तथाकथित विशेषज्ञों ने भी पहले यही सुझाव दिया कि विकास कार्यकर्ता

सांस्कृतिक मान्यताओं के प्रति संवेदनशील रहें और स्थापित परम्पराओं से न टकराएं। योजनाओं से जब आपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हुए तव असफलता के कारणों का विश्लेषण किया गया। दोषी पाया गया परम्पराओं को। नयी मांग थी सांस्थानिक डोंचे, अभिवृत्तियों और मूल्यों को बदलने की। अल्पज्ञ विशेषज्ञ, जो विकास के क्षेत्र में सर्वज्ञ बने घूम रहे थे, ऐसा कोई मन्त्र नहीं दे सके जिससे यह तत्काल सम्भव हो सके। परम्परा की सृजनात्मक ऊर्जा से भी वे अपरिचित थे। उन्हें ये भी अहसास नहीं था कि परम्परा की अवरोधात्मक प्रतिक्रिया विकास के समूत्रे एजेण्डा को अस्त–व्यस्त कर सकती है। नियोजन, प्रबन्धन, संचार नीति के दोष आदि भी विकास असफलता के उत्तरदायी हो सकते हैं, परन्तु इनकी ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। संस्कृति और परम्पराएं कठघरे में रहीं, चारों ओर से उन पर हमले हुए और होते रहे। सब सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक मूल्यों तथा अभिवृत्तियों को बदल देना चाहते थे, पर ऐसा कर सकने की कोई कारगर सामाजिक प्रविधि उपलब्ध नहीं थी।

आधनिकीकरण का आकर्षण, आर्थिक विकास के अतिरिक्त जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी अभिव्यक्ति पा रहा था एक छोटा–सा वर्ग, जो सम्पन्न था और विकासक्रम के लाभों से जिसकी स्थिति और भी मुह हो गयी थी, आधुनिकता का प्रतिरुप बना। उसकी जीवन शैली बदली, विचार शैली नहीं। यह छन आधुनिकता थी जो अहम् के साथ अनेक वहम भी पाल रही थी। यह अभिजात्य और सम्पन्नता की झीनी परत पधिमीकरण कोही आधुनिकीकरण मान बैठी थी। उसने विवेक के तर्क, परानुभूति, भूमिकाओं की सचलता और सक्रियता आदि गुण, जो आधुनिकता के आधार लक्षण हैं, नहीं अपनाये, भोगवादी और प्रदर्शनवादी जीवन–शैली जसर अपना ली। बौद्धिक क्षेत्र में आये परिवर्तन और भी आश्चर्यजनक तथा साथ ही चिन्ताजनक भी यो अकादमिक क्षेत्र में देशज चिन्तन पीछे फूटता गया और पधिमी विचार प्रणालियों विचार–जगत पर छा गयीं। यह बी बौदिक उपनिवेशवाद की स्वीकृति, जिसके लिए कुछ प्रलोभन तो थे पर विशेष दवाव या आग्रह नहीं। साहित्य और कला पर भी पश्चिमी प्रभाव स्पष्ट को अपनी जडों से कटा यह बौद्धिक वर्ग अनुकरण का उत्सवीकरण कर रहा था। आत्म–रति में लीन यह वर्ग अपने व्यापक सामाजिक उत्तरदायित्वों के प्रति उदासीन था। कभी–कभी उसकी चेतना जागती थी किन्तु उसकी प्रतीकात्मक सक्रियता झूठा आत्म–सन्तोष भले ही दे, समाज को दिशा दे सकने में समर्थ नहीं थी

lUnHkZ xzUFk%

1. इण्टरनेशनल सेमिनार, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ– डॉ0 नवीन ष्ांकर पाण्डेय
2. जनरल ज्ञान दायिनी समाज विज्ञान ष्ोाध पत्रिका,(पृष्ठ 147) दिसम्बर 2012
3. भारतीय अर्थव्यवस्था, डॉ0 जे0 सी0 पन्त एवं डॉ0 एस0 सी0 जैन
4. प्रतियोगिता किरण (हिन्दी मासिक) अगस्त, 2003
5. आई0 ए0 एस0 किरण (हिन्दी मासिक) अगस्त, 2003